चमार

जी० डब्ल्यू० ब्रिग्स की “द चमार्स” का हिन्दी अनुवाद



अनुवाद

जय प्रकाश कर्दम

जी० डब्ल्यू० ब्रिग्स की "द चमार्स" का हिन्दी अनुवाद

चमार



अनुवाद

जय प्रकाश कर्दम

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: नवम्बर, 2026

© जय प्रकाश कर्दम

लेखकीय

इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य चमारों की स्थिति का यथार्थ एवं न्यायपूर्वक पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना रहा है। इसके लिए अनेक जातियों की सामान्य विशेषताओं तथा कुछ भिन्नताओं सहित पर्याप्त सामग्री शामिल की गई है। लेकिन तुलनात्मक अध्ययन करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। इस अध्ययन का आधार संयुक्त प्रांत के चमार रहे हैं, किन्तु भारत के अन्य भागों के चमार और चर्मकारों के विषय में भी जानकारी दी गई है। इसमें इब्बस्टन, क्रुक, रोज, रसेल और अन्य लेखकों की रचनाओं का इस्तेमाल किया गया है, साथ ही राष्ट्र एवं प्रांत दोनों की जनगणना रिपोर्टों का भी सहारा लिया गया है। केवल जनगणना तालिकाओं में पाए जाने वाले तथ्यों के अलावा, इस पुस्तक में दी गई, इन स्रोतों से प्राप्त लगभग समस्त सामग्री को चमार के दो या इससे अधिक महत्वपूर्ण समुदायों पर तथा कुछ सामग्री को अन्य उपजातियों पर परखा गया है और इस विशेष जाति के अनुरूप सत्यापित अथवा संशोधित किया गया है। इसी प्रकार, मानव विज्ञान, नृवंशविद्या, जीववाद एवं जादूसंबंधी अध्ययनों की सामग्री को अनुसंधान का आधार बनाया गया है। प्रत्येक दृष्टांत में ये प्रश्न रहे हैं: "क्या चमारों में ये विश्वास अथवा प्रथा प्रचलित हैं?" और " क्या चमारों के विश्वास और कार्य करने का यही ढंग है?" अनेक उपजातियों के किसान चर्मकार, मोची, जादूगर (झाड़-फूंक करने वाले), गुरु तथा सेवक सभी प्रकार के लोगों से जानकारी

प्राप्त की गई है। गांवों तथा कस्बों और शहरों में रहने वाले दोनों प्रकार के लोगों से प्रश्न पूछे गए हैं। सभी मामलों में एकमात्र उद्देश्य चमारों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना रहा है। उत्तर-पश्चिम के चमार पंजाब के मिथ्या विश्वासों से प्रभावित रहे हैं, जबकि पूर्व के चमारों पर विंध्यवासियों के अनोखे विश्वासों की छाप है। इस कारण से नामों और विश्वासों में विवरण की एकरूपता नहीं मिलेगी। किन्तु यह तथ्य के आधार पर कि किसी निश्चित उपजाति या किसी मौहल्ले या बस्ती में कुछ प्रथाएं और कुछ नाम नहीं मिलते हैं चमारों में पाए जाने वाली इन बातों को नकारा नहीं जा सकता है। तथापि संपूर्ण चमार जाति में विचार और जीवन की मुख्य बातें स्पष्ट रूप से समान हैं।

चमार उपजाति के नामों के स्वरों के विशिष्ट चिह्नों का प्रयोग नहीं किया गया है, केवल 'चामड़' के मामले को छोड़कर, क्योंकि बहुत से नामों में शब्द विन्यास (हिज्जे) की पर्याप्त विशुद्धता प्राप्त करना असंभव है।

आंकड़े एकत्र कराने में मदद करने तथा इस अनुसंधान की आलोचना करने के लिए सिविल तथा मिशनरी क्षेत्र के मित्रों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

जी. डब्लू० ब्रिग्गस

इलाहबाद,

31 जनवरी, 1920

अनुवादकीय

सितम्बर, 1989 में श्री पन्नीलाल 'निर्भीक' के जरिए पहली बार जी. डब्लू. ब्रिग्गस द्वारा लिखित पुस्तक 'द चमार्स' की एक जीर्ण-शीर्ण प्रति हाथों में आई। पुस्तक को पढ़ने से प्रथम दृष्टया ही यह महत्वपूर्ण और उपयोगी लगी। दलितों के सामाजिक- धार्मिक जीवन का इतना व्यापक और तथ्यपरक अध्ययन अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिला था। एक दिन चर्चा के दौरान डॉ. धर्मवीर ने सुझाव दिया कि इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद होना चाहिए। मुझे ताज्जुब हुआ कि इतनी महत्वपूर्ण पुस्तक अभी तक हिन्दी समाज तक क्यों नहीं पहुंची। इसका अनुवाद काफी पहले हो जाना चाहिए था। मुझे लगा कि आज के दौर में जब दलित अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं तथा सत्ता में अपनी भागीदारी का सवाल उठा रहे हैं। उनका शिक्षित और प्रगतिवादी होना अनिवार्य है। उन्हें अपनी परम्पराओं, विश्वासों, मान्यताओं और रीति-रिवाजों का मूल्यांकन करना होगा और यह देखना होगा कि कौन-सी बातें प्रगति के लिए आवश्यक हैं और कौन-सी अनावश्यक, क्या स्वीकार्य हैं और क्या अस्वीकार्य । प्रगतिशीलता के इस दौर में वही टिकेगा जो विश्वास को नहीं वैज्ञानिकता को अपनाएगा, परम्परा को नहीं औचित्य को मानेगा। भविष्य का रास्ता अतीत की कोठरी से निकलता है, इसलिए हम इतिहास का अध्ययन करते हैं। इस दृष्टि से

इस पुस्तक का महत्व स्वयंसिद्ध है। इतने व्यापक और गहन अध्ययन के लिए ब्रिग्गस महोदय निश्चित रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक में चमारों को जिस समय की स्थिति का चित्रण है। उस समय तक चमार अशिक्षित थे तथा अंधविश्वासों के शिकार थे। इस समाज के गुरु और संत भी, जिनको समाज सर्वोच्च महत्व और सम्मान देता था और जिनकी ओर देखता था, कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रायः ईश्वरभक्ति में ही उलझे रहे। समाज को प्रगतिशील बनाने की दिशा में कोई क्रांतिकारी बदलाव वे नहीं ला सके। हालांकि अब समाज सार्थक बदलाव की दिशा में अग्रसर है। शिक्षा के प्रसार के साथ बहुत-सी अवैज्ञानिक, अतार्किक और घृणित परम्पराओं और विश्वासों को उसने त्याग दिया है। किन्तु उनकी कुछ मान्यताएं और विश्वास आज भी बहुत वैज्ञानिक और महत्वपूर्ण हैं।

जय प्रकाश कर्दम

दिल्ली-110093

21 मार्च, 2000

अनुक्रम

लेखकीय	2
अनुवादकीय	4
जाति	7
सामाजिक और आर्थिक जीवन	50
घरेलू रीति-रिवाज: जन्म	89
घरेलू रीति-रिवाज : विवाह	110
घरेलू रीति-रिवाज : मृत्यु : विविध	151
आत्मा जगत	186
रहस्य	248
उच्चतम धर्म	313
दृष्टिकोण	353
परिशिष्ट - अ (सारणियां)	392
परिशिष्ट-ब	408
परिशिष्ट-स	415

जाति

चमड़ा पकानेवाले (अर्थात् शोधन करनेवाले), खालें तैयार करनेवाले, चमड़े की वस्तुएं बनानेवाले तथा जूते बनानेवाले, भारतीय समाज व्यवस्था में एक सुपरिभाषित श्रेणी (वर्ग) से संबंध रखते हैं। इनमें से अधिकांश कर्मकारों को आज उत्तरोत्तर भारत में साधारणतौर पर 'चमार' के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। यह व्यावसायिक समूह अनादिकाल से खोजा जा सकता है। ऋग्वेद[1], उत्तर वैदिक साहित्य[2] तथा ब्राह्मण ग्रंथों[3] में चर्मशोधकों (चरमन) का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में चर्म-शोधन की प्रक्रिया को मलन्द भी कहा गया है[4] और मृत पशुओं की खाल काढ़ने (खींचने)[5] तथा खालों को नमी पहुंचाने (सुखाने के पश्चात्)[6] के कतिपय विवरण सम्भवतः उत्पादन करने की प्रक्रिया को दर्शाते हैं। बैल की खालों का उपयोग 'सोम' को दबाने में,[7] और बैल की खालों[8] तथा बारहसिंगा (हिरण)[9] और चीते की खालों[10] का उपयोग सांस्कारिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता था । 'शतपथ ब्राह्मण'[11] तथा अन्य प्राचीन साहित्य[12] में खालों का वस्त्रों के रूप में उपयोग होने का उल्लेख किया गया है। 'मरुत', हिरण की खालें ओढ़ते थे[13] तथा सघन वनों (जंगलों) में रहनेवाले तपस्वी-संन्यासी खालों के वस्त्र पहनते थे।[14] इससे उस समय में चमड़ा तैयार किए जाने का पता चलता है।